भारतीय इतिहास : साहित्य एवं संस्कृति

डॉ० ओकेन्द्र
डॉ० बालक राम भद्री
डॉ० गीता

भारतीय इतिहास : साहित्य एवं संस्कृति

सम्पादक
डॉ० ओकेन्द्र
डॉ० बालक राम भद्री
डॉ० गीता

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी-508, गली नं.17, विजय पार्क,
दिल्ली-110053
मो. 08527460252, 09990236819
ईमेल: jtspublications@gmail.com

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स, दिल्ली

भारतीय इतिहास : साहित्य एवं संस्कृति

सम्पादक
डॉ० ओकेन्द्र
डॉ० बालक राम भद्री
डॉ० गीता

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन- फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक/ संपादक/ प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों में निहित विचार तथा संदर्भों का संपूर्ण दायित्व स्वयं लेखकों का है। संपादक/ प्रकाशक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है ।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २०२३
ISBN 978-93-5890-929-6

प्रकाशक
जे०टी०एस० पब्लिकेशन्स
वी-५०८, गली नं०१७, विजय पार्क, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ०८५२७ ४६०२५२, ०११-२२६११२२३
E-Mail : jtspublications@gmail.com
मूल्य : १२०० रूपये

आवरण : प्रतिभा शर्मा, दिल्ली
मुद्रक : तरूण ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Bharatiy Itihas : Sahitya Evam Sanskrti Edited by
Dr. Okendra, Dr. Balak Ram Bhadri, Dr. Geeta

११. भारतीय राजनीति में मीडिया की भूमिका १७४
नजीर सुलताना ख्वाजा खान पठान

१२. त्रितीय समावेशन : एक मूल्यांकन (भारत के विशेष संदर्भ में) १८४
डॉ० राजेश मौर्य

१३. डॉ० रमाकान्त सोनी के मन्थों में तुलसी काव्य के प्रासंगिक तत्व का दिग्दर्शन १९८
सरोजनी अडसेना, डॉ० रेखा तुबे

१४. भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का वैश्विक प्रभाव २०३
फरहत परविन

१५. भारतीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में लोकसंगीत २१२
डॉ० पि० शांती

१६. भारतीय संस्कृति के उपासक कवि मैथिलीशरण गुप्त २१७
डॉ० शोभना फोक्फाडन, डॉ० बी० अनिरुद्धन

१७. भारतीय संस्कृति में बौद्ध धर्म का योगदान २२७
डॉ० राजेश कुमार कहार

१८. ब्रिटिशकाल में भारतीय रेलवे की स्थापना : विकास और विस्तार का ऐतिहासिक अध्ययन २३४
डॉ० अखिल कुमार गुप्ता

१९. समाज में व्याप्त अपशब्दों का भाषिक संरचना विवेचन २४३
डॉ० अँचल कुमारी

२०. भारतीय लोक कला, परम्परा एवं प्राचीन चित्र कलाएँ २५३
डॉ० पल्लवी सिंह 'अनुमेहा'

२१. वैश्विकरण के दौर में हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति २६०
प्रा० कैलास काशिनाथ बच्छाव

२२. कृषि विकास में जनसंचार माध्यमों का योगदान २६६
डॉ० वेदप्रकाश

१६
भारतीय संस्कृति के उपासक कवि मैथिलीशरण गुप्त

–डॉ॰ शोभना कोक्काडन[1], डॉ॰ वी॰ अनिरूद्धन[2]

प्रस्तावना : प्रत्येक कवि के काव्य में युग का सफल प्रतिबिंब होता है। कवि जितना भी प्रभावशाली क्यों न हो वह अपने आंतरिक जगत् को समाज एवं परिस्थितियों से विलग नहीं रख सकता। युगानुकूल प्रवाह में बहते हुए युग के धर्म तथा उनकी मान्यताओं, दुर्बलताओं एवं विशेषताओं को अपने काव्य में चित्रित करता चलता है। उन्नीसवीं शती में भारत की सामाजिक स्थिति अवनति के कगार पर पहुँच चुकी थी। ऐसी अवस्था में एक विकासोन्मुखी संस्कृति से युक्त विदेशी शक्ति के जम जाने और विविध क्षेत्रों में आगे बढ़ती हुई उनकी भाषा का प्रचार, संस्कृति का प्रभाव आदि का हमारे समाज पर प्रभाव पड़ना बिलकुल स्वाभाविक था। फिर. भी भारतीयों की दार्शनिक प्रवृत्ति पूर्ण रूप से स्थगित न हुई, इतना तो अवश्य हुआ कि भौतिकता की टकराहट में भारतीय जनता को एक धक्का–सा लग गया और वह इस भाव से अपने घर के सामानों पर नजर दौडाने लगी कि जो चीज़ लेकर यूरप भारत आया है वे हमारे घर में है या नहीं। उन्नीसवीं शताब्दी का यही जागरण भारत का नवोत्थान था।[1] भारतीय समाज एवं धर्म की तत्कालीन अवस्था, इश्वर में अविश्वास, मुसलमानों का धर्म प्रचार और अंग्रेज़ों का ईसाई धर्म–प्रचार आदि अनेक कारणों से देश की सदियों से सोई हुई चेतना में सहसा जागृति के लक्षण प्रकट हुए और उसमें सुधार की भावना उद्दीप्त हुई। हिन्दू धर्म को अवनति से बचाने के लिए उसे नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाना था। उसकी नई व्याख्या करनी थी। यहाँ से विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, आन्दोलनों का जन्म हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिक्ल सोसाइटी इत्यादि ने धर्म सुधार का बीडा उठाया और जबर्दस्त आन्दोलन शुरू हुआ। यहाँ कवि के रूप में गुप्त जी ने भी पौराणिक आदर्शों को अपनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। गुण और परिणाम की दृष्टि से नवोत्थान को गुप्तकाव्य में जितनी अभिव्यक्ति

Professor & Head, Dept.of Hindi, Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women , Deemed to bw University, Coimbatore , Tamil Nadu 641043

मिली है उतनी सारे हिन्दी साहित्य में उनके पूर्व या बाद में नहीं दिखाई पडती। अतीत की उज्जवल उपलब्धियों के चित्रण द्वारा कवि ने पौराणिक भारत की अमिट भावनाओं को अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयास किया। उनकी रचनाओं में दश की अतीत संस्कृति के प्रति प्रेम और श्रद्धा विशेष रूप में पाया जाता है।

गुप्तजी के काव्य में अतीत का गौरव गान :

'भारत–भारती' में हम अतीत गौरव को मुखर रूप में पा सकते हैं। 'साकेत', 'स्वदेश संगीत', 'मंगल घट' आदि रचनाओं में भी अतीत के गौरव का जीता जागता चित्रण हुआ है। तत्कालीन भारत की स्थिति को महत्वपूर्ण अतीत के आलोक में जॉच कर कवि समाज से और अपने आप से पूछते हैं– 'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी'। इस समस्या के बारे में सब के मिलकर सोचने की जरूरत पर कवि ज़ोर देते हैं। वे अभिमान करते हैं कि हमारे पूर्वज बडे महान थे, स्वतंत्र थे, संपन्न थे। कवि के मत में पूर्वजों का वर्णन अपार और सीमाविहीन है। हमारे पूर्वज बडे दार्शनिक थे। उनकी शक्ति से सभी पाप और दुःख दूर हो जाते थे। सब लोग उनके हितैषी थे और वे संसार की उन्नति चाहते थे। ('भारत–भारती'–अःख–पृ.20) वे धर्म रक्षक थे, धर्म उनकी भी रक्षा करता था। वे कर्म से ही कर्म का नाश करने वाले थे। उनके जीवन के बारे में गुप्तजी कहते हैं– 'हॅसते हुए आते न थे, रोते हुए जाते न थे'।('भारत–भारती'–अःख–पृ.12) 'हिन्दू' में कहा गया है कि आर्यों की धूम समस्त भूमण्डल में मची हुई थी। तिब्बत, स्याम, चीन, जापान, लंका, यवद्वीप, ईरान, काबुल, रूस, रोम, यूनान सभी जगह आर्यों की आन थी। ('हिन्दू'–पृ.33) 'जयद्रध–वध' में भी कवि अतीत के गौरव का स्मरण दिलाकर उद्‌बोधन का कार्य करते हैं। ('जयद्रध–वध'–पृ. 6,8) सांस्कृतिक राष्ट्रीयता में विश्वास रखनेवाले कवि आशा करते हैं कि थोडे ही समय में स्वतंत्रता का प्रभाव होनेवाला है, ऐसे अटल विश्वास का संचार जनता में कवि करना चाहते हैं। कवि के दुर्दमनीय आशावाद का रूप 'पत्रावली' में झलकता है–

'घोर क्या व्योम में हैं अविरत सोम की मेघमाला?
होता है अंत में क्या वह प्रकट नहीं और भी निवाला?[2]

मातृभाषा के प्रति प्रेम :–

गुप्तजी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रेमी रहे हैं। हिन्दी की वर्तमान दशा से दुःखी होकर वे कहते हैं–

'अहो मातृभाषे, दशा देश तेरी, न होती निराशा कभी दूर मेरी।
बडा कष्ट है तू अभी दीन है, सभी भाँति से हो रही हीन ही है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की ओर कवि का ध्यान वरावर रहा है और वे घोषणा करते हैं कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने की अधिकारिणी है। देश में एक भाषा होने के सिद्धान्त पर वल देते हुए कवि कहते हैं–

'इस योग्य हिन्दी कें तदपि अब तक न निज पद पा सकी
भाषा बिना भावैकता अब तक न हममें आ सकी। (मा.मा.पृ.175)

ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा लोकप्रिय न होने पर कवि खेद प्रकट करते हैं। उनके विचार में हिन्दी भाषा को अपनाना राष्ट्रीय चेतना को विकास देना है। इसलिए राष्ट्रीयता के अन्य तत्वों के साथ कवि राष्ट्रभाषा को अपनाने की भी आशा करते हैं :–

'ग्रम ग्राम में ग्रन्थागार, करें ज्ञान–गुण का विस्तार।
बढ़े हिन्दी–हिन्दी पर प्यार, भरें राष्ट्रभाषा भण्डार।
फैलाओं हिन्दू साहित्य, युग युग का सहचर निज नित्य।
ध्वज भू, निज भूशा, निज वेश, निज भाषा, निज भाव अशेष्ज्ञं[3]

आर्य जाति की महिमा

गुप्तजी अनेक स्थानों पर भारत का 'आर्यभूमि' के और उसकी जनता को 'आर्य' नाम से उल्लेख करते हैं। इन नामों से वे किसी वर्ग विशेष की ओर संकेत नहीं करके संपूर्ण भारत एवं भारतीय जनता का ही परामर्श करते हैं। यद्यपी कवि हिन्दू धर्म पर विशेष आस्था रखते हैं, तो भी जहाँ भारतीय राष्ट्रीयता का प्रश्न आता है, वहाँ धर्म पर आधारित भिन्नता को निरर्थक मानते हैं। सभी धर्मों तथा संप्रदायों के लोगों में वे हिन्दू रक्त का अस्तित्व मानते हैं–

वैष्णव, शैव शाक्त, सिख जैन, हो कि न हो या कुछ हो ऐन,
पर तुम में है हिन्दू–रक्त, हो इस पुण्य भूमि के भक्त।[4]

इसकी विस्तृत चर्चा मानवतावाद में हो चुका है। राष्ट्रकवि के रूप में गुप्तजी का विशेष महत्ता इस बात में है कि वे भारत को एक मानते हैं और एक मानने की सबल प्रेरणा देते हैं। भाषा, प्रदेश या प्रान्त की सीमाओं के वे परे थे। देश भर की जनता को एक सूत्र में बॉधना तत्कालीन युग की मांग थी। कवि इस बात को समझकर प्रान्तीय सीमाओं को लॉघते हुए एक दूसरे के सुख दुःखों में भागी होने का आदर्श हमारे सामने रखते हैं–

'वही पंचनद राजस्थान, प्राप्त जिन्हें है गौरव मान
वही बिहार, उडिया, वंग, हैं अक्षय भारत के अंग
युद्ध, मध्य पांचाल, पुलिंद, चेढि, कच्छ, कश्मीर, कुलिन्द
द्रविड़, मद्र, मालव, कर्णाअ, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, विराटए ....
कामरूप, किंवा आसाम, सातों पुरियों चारे, धाम,
अटक–कटक तक एक अभंग दुख में सुख में सब हैं संग।[5]

प्राचीन भारतीय सभ्यता की विशेषताओ का वर्णन

गुप्तजी भारतीय संस्कृति के उत्तम अशों को सुरक्षित रखते हुए, ज्ञान क्षेत्र में अन्य देशों की सिद्धियों को भी स्वायत्त करना चाहते हैं। भारतीय सभ्यता की आध्यात्मिक साधनाओं पर उन्हें गर्व है, पर पाष्चात्य जगत ने जो भौतिक उन्नति प्राप्त की है उसकी वे अवहेलना नहीं करते। वे चाहते हैं–

'उसकी सी साधना रहे, अपनी आराधना रहे।
उनका अथक परिश्रम हो, पर उनमें अपना क्रम हो।
उनकी ऐसी कृति रखो, अपनी किन्तु प्रकृति रखो।
उनका–सा आवेश रहे, पर अपना उद्दश्य रहे।
उनका–प्रेम, श्रेय अपना, उनका गेय, ध्येय अपना।
उनकी गति, पद्धति, अपनी, उनकी उन्नति, मति अपनी।
उनकी प्रस्तावना पगे, पर अपनी भावना जगे।
उनका–सा उद्योग करो, किन्तु भोग में योग करो।[6]

गुप्तजी भी सांप्रदायिक भेद भाव के विरोधी हैं। वे चारों जातियों को समान मानते हैं। और चातुवर्ण्य पर आधारित उच्च–नीचता का खण्डन करते हैं। 'पंचवटी' में गुप्तजी ने गुह, निषाद आदि जातियों के लोगों की सरलता एवं निष्कलंक मनोभाव की ओर संकेत करके उनके प्रति की गयी उपेक्षा को अनुचित माना 'अनघ' में वर्ण–व्यवस्था का विरोध अधिक सबल रूप में व्यक्त हुआ है। वस्तुतः अनघ के

चरित्र को रूप देने में गुप्तजी का एक उद्धेश्य ही जाति–पांति का विरोध रहा है। मघ बुद्धदेव का एक पूर्व अवतार है। बुद्ध और बुद्ध धर्म ने मानव–पात्र की समता पर विशेष बल दिया। अतः मघ में भी इस समता के आदर्श का आरोप किया गया है–

'किन्तु है मनुज मात्र सम जिसको,
दिजों से शूद्र नहीं कम है जिसको
तुलो जो आप तुच्छता पर है
उसे क्या जाति पॉति का डर है।(अनघ – पृ. 18)

जाति पांति पर आधारित उच्चनीचता पर गुप्तजी को इतनी घृणा है कि पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखित रचनाओं में भी आधुनिक सुधारात्मक मनोभाव का सन्निवेश करते हैं।

चातुर्वर्ण था, आये मख में मित्र तुल्य ही मोच्छ।
स्वागत–पूर्वक पाया सबने उच्चातिथ्य यथेच्छ।[7]

'भारत भारती' में उन्होंने स्पष्टतः यह आग्रह प्रकट किया है कि सभी अपने अपने कर्तव्य का पालन करे। (भारत भारती–भविष्यत–पृ.72) चारों वर्णों के लोगों का अपने अपने कर्तव्य कर्म पालन करना ही उनके मत में भारत के उत्कर्ष का मार्ग है–

ब्राह्मण बढाने बोध को क्षत्रिय बढाने शक्ति को।
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुशक्ति को
यों एक मन होकर सभी कर्तव्य के पालक बनें
ते क्या न कीर्ति वितान चारों ओर भारत के तने।[8]

अहिंसा

भारतीय संस्कृति के अनुसार 'अहिंसा परमोधर्मः अहिंसा लक्षणो धर्मः' आदि है। वैदिक काल से लेकर आज तक अहिंसा का यह सूत्र अटूट रहा है। गुप्तजी काव्यों में भी इस सूत्र की प्रतिष्ठा हुई है। इसका एक प्रमुख कारण गॉधीजी का प्रभाव भी है।

गॉधीजी के भारत की संघर्ष भूमि में पदापर्ण के बाद सांस्कृतिक तत्वों की पुनः प्रतिष्ठा होने लगी। गॉधीजी अपने जीवन के इक्कीस साल आप्रिका में जिए थे। उनकी अहिंसा का स्पष्टि उदाहरण इक्कीस साल की आफ्रिका की तपश्चर्या है। वहॉ उन्होंने मार खाई, जेल में बडे यंत्रणाएँ सहीं, फिर भी विपक्षी के प्रति वैर भावना नहीं थी, धीरज नहीं खोया, हिम्मत नहीं छोड़ी। कोध त्यागकर

लडते ही रहे। अहिंसा भारत की सभ्यता का सार है। वह सत्य की बुनियाद है। गॉधीजी के अहिंसा सिद्धान्त का मूलाधार भागवद्गीता ही है। भारतीय स्वतंत्रता– संग्राम के निरुपद्रवी हथियार के रूप में उन्होंने अहिंसा का पहला प्रयोग किया। गॉधीजी के अनुसार सच्ची अहिंसा, प्रेम और सामर्थ्य से उन्नति हो सकती है। बिना अहिंसा के मनुष्य सत्य तक नहीं पहुँच सकता। वे प्रतिपल हिंसा का विरोध करते है। उनका कहना है कि हिंसा पशुता का काम है। 'पृथ्वीपुत्र में मात्रुभूमि की उक्ति है कि जो अहिंसा को सर्वथा त्यागकर युद्ध को प्रश्रय देते हैं उनका राज्य न तो स्थायी रहता है और न ही उनकी कहीं धाक होती है–

एक सदुद्धश्य कह के ही सब जूझे हैं,
किन्तु एक इति में जुडा हुआ है अन्त दूसरा।
शासक का नाम रख त्रासक ही होगा तू
भय से जो बाध्य होंगे साध्य होंगे क्या कभी।
अनुगत होंगे घात करने के पीछे से।
पर जनता ने उन्हें नेता कहॉ माना है।[9]

हिंसा मनुष्य को दानव बननेवाली नीति है। इसके विपरीत अहिंसा सर्वत्र ही मान्य होकर कब कहीं विजय प्राप्त करती है। दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाली हिंसा से अपनी ही सुख –शांति भंग हो जाती है। 'राजा–प्रजा' में मानवतावादी गुप्तजी गॉधीवाद से सहमत होकर कहते हैं–

हिंसा केवल हिंस्र, घृणा है धृण्य बनाती,
तुम पर के प्रिय, किन्तु न हो अपने घर घाती।
देखा तुमने अभी अहिंसा जीत चुकी है।[10]

स्वदेश संगीत कवि चेतावनी देते हैं कि शस्त्रों का प्रयोग किसी को मारने के लिए नहीं प्रयुक्त किया जाना चाहिए । गॉधीजी की तरह अहिंसा परमो धर्मः माननेवाले कवि अहिंसा को अपने जीवन का ही धर्म बना देते है।

सत्य और नीति

सत्य एवं नीति का भारतीय संस्कृति में महनीय स्थान है। 'सत्यमेवजयते', 'सत्यं वद धर्म चर' आदि तत्व प्राचीन काल से चलते आ रहे हैं। सत्य ही संसार के अस्तित्व का आधार तत्व

है। गॉधीजी सत्यान्वेषी थे। गॉधीजी ने संपूर्ण विश्व–यंत्र को अपनी उंगली के संकेत के अनुसार चलाने के लिए सत्य का प्रयोग किया। सत्य के विनम्र सेवक पंथी गुप्तजी, भी सत्य की चिर प्रतिष्ठा करने का नीतियुक्त प्रयास करते हैं। गॉधीजी नीति को धर्म का आवश्यक अंग मानते थे। उनके अनुसार नीति रूपी नींव ढूँढ जाय तो धर्म की इमारत शी ढ़ह जाएगी। यश या वैयक्तिक स्वार्थ केलिए नैतिक तत्वों का आचरण करनेवाला धार्मिक नहीं हैं।

सत्य और नीति की स्थापना के लिए शिष्टाचार एवं लोक–मर्यादा का पालन करना सर्वधा अपेक्षित है। स्वदेश संगीत में गुप्तजी इस विचारधारा का प्रतिपादन करते हुए, शुद्ध आचार–विचार को लोक मंगल का आधार मानते हैं । साकेत में भी कवि सत्य एवं नीति की स्थापना करने का प्रयास करते हैं। साकेत एक मंगल काव्य होने के नाते अन्य मानवतावादी आदर्शों के समान सत्य और नीति परक आदर्शों की प्रतिष्ठा करता है।

'साकेत' के द्वितीय सर्ग में कवि सत्य के विश्वव्यापी गुण के बारे में उल्लेख करते हैं। कैकेयी के, दो वरदान पूछने पर राजा दशरथ, उसे वरदान देने की ओर संकेत करते हुए कहते हैं–

'सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार,
राज्य ही नहीं, प्राण–परिवार,
सत्य पर सकता हूँ सब वार।[11]

भारतवर्श के पूवर्जों के आदर्शों की चर्चा करते हुए गॉधीवादी कवि सत्य–रक्षण की ओर प्रकाश डालते हैं–

'आमिश दिया अपना जिन्होंने श्येन–भक्षण के लिए,
जो बिक गए चाण्डाल के घर सत्य–रक्षण के लिए।[12]

कर्मण्यता

भारतीय संस्कृति की यह एक विशेषता है कि उसका कर्मक्षेत्र फल कामना से मुक्त था जैसे भगवदगीता में प्रतिपादित है **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेशु कदाचन।** में कवि का द्रुढ विश्वास रहा है। कर्मण्यता त्याग का साधन है। इसलिए भारतीय संस्कृति में इसका बड़ा महत्व है। गुप्तजी गॉधीजी के कर्मयोग से उत्तेजित होकर अपने

काव्यों के ज़रिए मानव कल्याण के लिए कर्मण्यता की अनिवार्यता को साबित करने का प्रयास करते हैं। गुप्तजी के काव्य मूलतः जीवन की कर्मण्यता पर अधिष्ठित है। वे ध्येय की पराकाष्टा को महत्वपूर्ण मानते हैं, जिसमें कर्म की महत्ता का प्रतिपादन ही मुख्य रहता है। गॉधीजी के कर्मपथ के अटल विश्वासी कवि भारतवासियों को कर्मक्षेत्र की ओर आमंत्रित करते हैं। उनके महाकाव्य कर्म धीरों की कथा है। कर्मयोग, कर्मफल आदि का 'गीता' के अनुसार 'साकेत' में वर्णन हुआ है। 'साकेत' के द्वादश सर्ग की रण सज्जा के सिलसिले में सभी साकेत वासी रण क्षेत्र में जाने के लिए तैयार होते हैं। पत्नियॉ अपने पतियों को, माताएँ अपने पुत्रों को रण क्षेत्र में जाने के लिए प्रोत्साहन देती हैं।

कामना को छोड़कर ही कर्म है इससे कर्मफल त्याग स्पष्ट हुआ है। कर्मयोग के प्रति गॉधीजी का भी यही विचार रहा है। गीता के अनुसार ईष्वर के अवतार का मुख्य लक्ष्य कर्मक्षेत्र में प्रवेष करके सज्जनों का परित्राण करना है। गुप्तजी की राय भी इसीलिए भूपर अवतरित हुए हैं। (साकेत – पृ.234)

'हिन्दू' में कवि संकेत करते हैं 'पालें हम सब निज कर्तव्य भरा इसी में भव का भव्य'। बिना कर्तव्य किए भाग्य भी साथ नहीं देता–'कर्म–तेल बिना विधि दीप जल सकता नहीं'। दुःख हो या सुख सभी परिस्थितियों में कर्म करना चाहिए।

कर्तव्य करना चाहिए, होगी न क्या प्रभु की दया,
सुख दुःख कुछ हो, एक सा ही सब समय किसका गया।[13]

'पत्रावली' में प्रतापसिंह की उक्ति है कि कर्तव्य से किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होना। यहॉ कवि कायर को कर्मोन्मुख बनाने का प्रयास करते हैं। 'मंगलघट' में मानवतावादी कवि का संदेश है कि मनसा वाचा कर्मणा कर्तव्य पालन ही सर्वश्रेष्ठ है, जो गॉधीवादी चिंतन का महत्वपूर्ण तत्व है,

जियो कर्म के लिए जगत में और धर्म के लिए मरो।
मन सेवाणी से कर्मों से, आधि व्याधि उपाधि हरो।[14]

स्वार्थों को छोड़कर निष्काम कर्म करना ही, मानवता की स्थापना के लिए उचित है। 'साकेत' में लक्ष्मण कहते हैं– 'कामना को छोड़कर ही कर्म है'। 'गुरुकुल में गुरु हरराय से कहलाया गया है–

'मुक्ति पाने में होंगे केवल अपने धर्म सहाय। कर्तव्य का पथ अतीव कठिन होता है। इसकेलिए प्रेम तक की बलि दे देनी पड़ती 'बक–संहार' में कवि द्विज द्वारा कुन्ती से इसी विचार को प्रस्तुत कराते हुए लिखते हैं कि जब एक व्यक्ति समष्टि के लिए अपना प्राण देता है तो उससे सभी की रक्षा होती है और सब के लिए अपना नाश करना भी भला है। 'साकेत' मे राम से यही कहलाया गया है–

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।[15]

गॉधीजी की कर्म परिपाटियों से कवि सदैव अवगत रहे हैं। गॉधीजी के निधन पर, उनके निष्काम कर्मों का स्मरण करके महान कवि कहते हैं कि उन्होंने अपनी जनता को दीन समझकर उनका सब कुछ जनता को दे दिया। लेकिन अकर्मण्य जनता ने निर्दय होकर उनके प्राणों को भी लूट लिया। यहॉ कवि गॉधीजी की कर्म–धीरता के आगे श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आत्मविभोर होकर कवि गॉधीजी से कहते हैं– अपने कर्मों का फल–हमको ही पाना होगा, तो बापू तुमको यहॉ एक बार फिर आना पडेगा। अर्थात् भारतवर्श की जनता उतना अकर्मण्य एवं स्वार्थ बन गई है। इन सब के बावजूद भी गॉधीवादी कवि जनता को उद्‌बोधन देते हुए गॉधीजी के शब्दों को दोहराते हैं– कर्म ही धर्म हैकर्म को धर्माधिष्ठित होना चाहिए। वहॉ ईष्वर से मिलन होता है।

जन संस्कृति तथा दश की उमंगों के साथ तादात्म्य का अनुभव करनेवाला कोई देशीय कवि जनता की सांस्कृतिक परम्परा से पृथक रहकर अथवा उसकी आवश्यकताओं की परिगणना किये बिना अपने अस्तित्व को समर्थक और अनुभूतियों का भण्डार प्रदान करती है; वर्तमान के अनुभव उसे सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन की गति–विधियों तथा आषा अभिलाषाओं से अवगत करते हैं; भविष्य उसकी रचनात्मक कल्पनाओं तथा आशान्वित स्वप्नों का केन्द्र बना रहता है। कालसीमा के अतीत होकर सतत प्रवाहित संस्कृति ही कवि की भाव–धारा को रूप देती है। मैथिलीशरण गुप्त भी ऐसी विराट सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करनेवाले महान कवि है, अतीत के उपासक हैं। वर्तमान के परीक्षक हैं; भविष्य के कल्याण–कांक्षी स्वप्न–द्रष्टा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

१. संस्कृति के चार अध्याय'–रामधारी सिंह दिनकर–पृ538
२. 'पत्रावली'–पृ.5
३. 'हिन्दू' – पृ.126
४. 'वही'–पृ.574
५. वही '–पृ.46
६. 'वैतालिक'–पृ.28–29
७. जय भारत–पृ–142
८. भारत भारती–भविष्यत–पृ.73
९. 'पृथ्वी पुत्र' – पृ.62
१०. 'राजा–प्रजा' – पृ.33
११. 'साकेत'– द्वितीय सर्ग – पृ.64
१२. भारत–भारती' – अतीत खण्ड – पृ.34
१३. भारत–भारती – पृ.185
१४. 'मंगलघट'पृ.49
१५. 'साकेत' – अष्ठम सर्ग–पृ.166